पाश्चात्य साहित्य-चिंतन

निर्मला जैन

राधाकृष्ण प्रकाशन

Scanned with CamScanner

आभिजात्यवाद और नव्य आभिजात्यवाद

हिन्दी शब्द 'आभिजात्यवाद' अंग्रेज़ी शब्द क्लासिसिज़्म के लिए प्रयोग किया जाता है। हिन्दी में आभिजात्यवाद के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति के लिए शास्त्रवाद, श्रेण्यवाद, आदि कई नाम समय-समय पर प्रस्तावित किए गए जो इसकी अलग-अलग विशेषताओं पर प्रकाश तो डालते हैं किन्तु समग्रता में क्लासिसिज़्म की अवधारणा का बोध कराने में समर्थ नहीं हैं।

वस्तुतः लैटिन शब्द 'क्लासिक्स' का प्रयोग रोम में करदाताओं के सर्वोच्च वर्ग के लिए किया जाता था। इसी आधार पर दूसरी शताब्दी में एक रोमन लेखक ने 'स्क्रिपतर प्रोलितेरियस, के विरुद्ध 'स्क्रिपतर क्लासिक्स' का प्रयोग सामान्य जनता से भिन्न अभिजातवर्ग के साहित्य के लिए किया। परिणाम यह हुआ कि आरंभ में क्लासिसिज़्म, क्लासिक और क्लासिकल (आभिजात्यवाद, अभिजात और आभिजात्य) श्रेष्ठता के वाचक हो गए। विशेषकर 'क्लासिक' शब्द का प्रयोग किसी ऐसी वस्तु, रचना या युग के लिए होने लगा जो किसी भी सभ्यता की श्रेष्ठता या उत्कर्ष की व्यंजक हो।

परन्तु जैसा शिपले ने संकेत किया है "उच्चवर्ग की कला या साहित्य के अर्थ में 'क्लासिसिज़्म' शब्द का प्रयोग आरम्भ के तत्काल बाद ही अप्रचलित हो गया अतः वर्तमान युग में उसकी विशेष प्रासंगिकता नहीं है।"

क्लासिसिज़्म के प्रतिशब्द के रूप में आभिजात्यवाद का प्रयोग भी बहुत उचित नहीं है। इस शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ से भी इस प्रवृति की सभी विशेषताओं की व्यंजना नहीं होती। किन्तु अब लगातार प्रयोग और प्रचलन के कारण यह शब्द अंग्रेज़ी साहित्य में क्लासिसिज़्म की 2000 वर्ष की क्रमशः विकसित अवधारणा के लिए हिन्दी में रूढ़ होकर मान्य हो गया है।

एक स्पष्ट प्रवृत्ति के रूप में आभिजात्यवाद की शुरुआत का श्रेय अरस्तू के सिद्धांतों के व्याख्याकार विचारक होरेस (65 ई. पू.) को दिया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

यह बात अलग है कि यह प्रवृत्ति अरस्तू के शास्त्रीय चिन्तन में ई. पू. चौथी शताब्दी में ही रूप ग्रहण कर चुकी थी। बल्कि यह कहना और अधिक सही होगा कि प्लेटो के काव्य-चिन्तन का भी एक पक्ष ऐसा है जिसमें क्लासिकी काव्य-चिन्तन के संकेत मिलते हैं। कविता में भावोद्रेक के स्थान पर बुद्धि-विवेक पर बल। आवेश के स्थान पर संयम का आग्रह। भाषा में अलंकृति की तुलना में सादगी और सरलता की स्वीकृति आदि बातें प्लेटो के क्लासिकी रुझान की सूचक हैं। प्लेटो की सत्यनिष्ठा और वाक्संयम को क्लासिकी आदर्श की आधारशिला स्वीकार करना अनुचित न होगा। इस प्रकार आभिजात्यवाद का बीज-वपन आदि आचार्य प्लेटो के काव्य चिन्तन में ही हो गया था।

अरस्तू तक आते-आते पाश्चात्य साहित्यशास्त्र ने निश्चित रूप ग्रहण कर लिया था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है अरस्तू के ग्रंथ (काव्य-शास्त्र) का नामकरण। अरस्तू के विवेचन का जो पक्ष उन्हें प्लेटो से अलग और आभिजात्यवाद के पुरोधा के रूप में प्रतिष्ठित करता है–वह था मुख्य रूप से त्रासदी और साथ ही महाकाव्य आदि अन्य काव्य विधाओं पर विस्तृत विचार-विमर्श। उन्होंने इन विधाओं के नियमों का निर्वचन करते हुए उनके पालन पर जिस रूप में बल दिया उससे आगे आने वाले समय में शास्त्रीय नियमबद्धता, रूप की स्थिरता और अनुशासन को अनिवार्य मानने वाली शास्त्रवादी पद्धति का प्रचलन हुआ।

अरस्तू के बाद लगभग दो शताब्दियों तक साहित्य-चिन्तन में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। ग्रीस तथा रोम में साहित्य-रचना का जो क्रम निरंतर चलता रहा उसमें विश्व-साहित्य की कुछ महान् कृतियाँ सामने आयीं। किंतु ई. पू. पहली शताब्दी तक आते-आते सर्जनशीलता का ह्रास होने लगा था। मन्द प्रतिभा रचनाकारों से मौलिक उद्भावना की तो आशा ही नहीं की जा सकती थी, सामान्य रचनाओं के स्तर में भी गिरावट आ गयी थी। आश्चर्य नहीं कि इन परिस्थितियों के अनुरोध से होरेस (65 ई. पू.) जैसे कवि विचारक को अरस्तू के सिद्धांतों की व्याख्या करने की आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने समसामयिक साहित्य की स्थिति को देखते हुए रचना के प्राचीन सिद्धांतों के अनुसरण को ही नहीं, प्राचीन श्रेष्ठ कवियों के अनुकरण को भी आवश्यक ठहराया। कालजयी श्रेष्ठ कृतियों तथा सिद्धांतों के श्रद्धामूलक अनुकरण के इस आग्रह के साथ ही पश्चिम में 'क्लासिसिज़्म' की पद्धति स्पष्ट रूप से सामने आती है।

लम्बे समय तक यह धारणा बनी रही कि कालजयी कृतियाँ (क्लासिक्स) की रचना केवल ग्रीक और लैटिन में हुई अतः 'आभिजात्यवाद' का एक प्रयोग ऐतिहासिक श्रेणी के रूप में ऐसे युग के लिए भी किया जाता रहा जिसमें श्रेष्ठ या कालजयी साहित्य की रचना हुई हो। आरम्भ में प्राचीन ग्रीस और रोम की संस्कृति और इतिहास के अध्ययन की प्रवृत्ति को, तथा ग्रीक और लैटिन कृतियों

Scanned with CamScanner

के आदर्श का अनुकरण करने और उनकी टक्कर की कृतियाँ रचने की प्रवृत्ति को श्रेण्यवाद या आभिजात्यवाद समझा गया।

एलेक्ज़ेण्ड्रा के लेखकों ने और रोम में–होरेस, बोकेशियो, सिसरो, डिमेट्रियस, पेट्रिआर्क आदि सभी लेखकों ने ग्रीक रचनाओं का अनुकरण किया। समय के साथ 'आभिजात्यवाद' पद का प्रयोग विशेष युग और उसकी प्रवृत्ति के अर्थ में सीमित न रहकर सार्वकालिक और सार्वभौमिक हो चला। आधुनिक युग में जब किसी रचना को 'क्लासिक' कहा जाता है तो आवश्यक नहीं कि उसकी भाषा पुरानी ग्रीक और लैटिन हो या उसकी रचना प्राचीन युग में हुई हो। शेक्सपियर के नाटक, मिल्टन का 'पैराडाइज़ लास्ट' या एलियट की 'वेस्टलैंड' भी उसी प्रकार कालजयी रचनाएं हैं जैसी होमर या वर्जिल की कृतियाँ। इसी तरह वाल्मीकि की 'रामायण', कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', तुलसीदास का 'रामचरितमानस', प्रसाद की 'कामायनी' या निराला की 'राम की शक्ति पूजा'–विभिन्न युगों में रची जाने पर भी 'क्लासिक' रचनाएं मानी जाती हैं। इन तमाम रचनाओं में किसी सामान्य तत्त्व की खोज करने पर निराशा ही हाथ लगेगी। यदि वैधता है तो केवल एक बात की, और यह बात है 'क्लासिक्स' के आदर्श का अनुकरण।

कहने के लिए रोमांटिक कवियों ने भी लैटिन के आदर्श का अनुकरण न करके ग्रीक रचनाओं के आदर्श का अनुकरण किया। परन्तु उनकी रचना-प्रक्रिया में अनुकरणधर्मिता की अपेक्षा प्रेरणापरकता अधिक लक्षित होती है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काल के प्रवाह में इस शब्द का संबंध न किसी वर्ग (सामाजिक श्रेणी) से रहा न ऐतिहासिक श्रेणी के रूप में किसी युग विशेष की रचनाओं से, किन्तु किसी न किसी रूप में कालजयी कृतियों के आदर्श के अनुकरण से यह संबंध आज भी कायम है। बल्कि इसका विस्तार ऐसी कालजयी कृतियों तक हो गया है जिनके आदर्श के अनुकरण की सम्भावना आगे आने वाले समय में प्रतीत होती हो। अर्थात् जो युग-प्रवर्तन की क्षमता रखती हों।

यह स्पष्टीकरण इसलिए आवश्यक है कि 'आभिजात्यवाद' मूलतः 'क्लास' या वर्ग-विभाजन के इतिहास से संबद्ध शब्द है। प्राचीन रोम में पाठक वर्ग की सामाजिक बौद्धिक स्थिति को देखते हुए दो प्रकार के साहित्य की रचना की जा रही थी : (1) स्क्रिप्तर प्रोलेतेरियस, जिसका लक्ष्य था लगभग अशिक्षित, कामकाजी, निम्नवर्गीय जनता। इस साहित्य को जन-साहित्य या लोक-साहित्य का आरम्भिक रूप कहा जा सकता है। (2) स्क्रिप्तर क्लासिक्स की रचना सुशिक्षित, उच्चवर्गीय, करदाता सम्भ्रांत समाज को दृष्टि में रखकर की जाती थी। स्वभावतः इस साहित्य को उच्च वर्ग का संरक्षण प्राप्त होता था और यह साहित्य उच्चवर्गीय संस्कृति से संबद्ध, परिमार्जित तथा 'शास्त्रबद्ध' साहित्य होता था। ऐसे अभिजातवर्गीय साहित्य की मूल्यवत्ता को मान्यता देने तथा उसका अनुकरण करने की प्रवृत्ति के कारण

ही इसका नाम आरम्भ में आभिजात्यवाद पड़ा। समाज की उच्च श्रेणी से संबद्ध होने के कारण आचार्य नलिनविलोचन शर्मा ने इसके लिए हिन्दी में 'श्रेण्यवाद' शब्द प्रस्तावित किया जो विशेष प्रचलित नहीं हो पाया। इसकी तुलना में क्लासिसिज़्म के लिए आभिजात्यवाद के समानान्तर 'शास्त्रवाद' शब्द का प्रचलन कुछ अधिक हुआ।

आधुनिक युग में 'क्लासिसिज़्म' और 'रोमांटिसिज़्म' दो ऐसी प्रवृत्तियों के वाचक पद हो गए हैं जो पूर्वापर क्रम में चक्राकार गति से समय-समय पर उदित और अस्त होती रहती हैं–परस्पर विरोधी और परस्पर पूरक रूप में।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद ने ही आभिजात्यवाद के प्रति उस ऐतिहासिक दृष्टिकोण की निर्मिति में सहायता की है, जिसके अनुसार 'आभिजात्यवाद' की विशेषताएं प्रकट और निश्चित होती हैं। आभिजात्यवाद को परिभाषित कर उसकी विशेषताओं का निरूपण करने का कारगर प्रयास उन स्वच्छन्दतावादियों ने किया जो आभिजात्यवाद का विरोध अपने पक्ष–समर्थन में कर रहे थे।

दूसरी बार आभिजात्यवाद पर विचार उन विचारकों ने किया जो स्वच्छन्दतावाद के विरोध में (तब) आभिजात्यवाद की पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास कर रहे थे। इस बार भी स्वच्छन्दतावाद ही आभिजात्यवाद की परिभाषा के निर्धारण में सहायक हुआ। शिपले के अनुसार : "रोमांटिक विचारकों और कवियों ने 'क्लासिसिज़्म' संज्ञा के इतने भिन्न और विविध प्रयोगों के सामान्य आधार और संयोजक अवधारणा की कुंजी प्रदान की।"

साहित्य और कला में 'आभिजात्यवाद' शब्द उन विशेषताओं का वाचक है जिनमें प्राचीन ग्रीस और रोम के साहित्य, कला और विचार-पद्धति के प्रति निष्ठा दिखायी पड़ती है। इस दृष्टिकोण का संबंध उन मूल्यों से है जो प्राचीन ग्रीस की जीवनविषयक अवधारणा से संबंधित हैं। ऐसे मूल्य जिनमें जीवन में वैशिष्ट्य और स्थायित्व को महत्त्व दिया जाता है।

वस्तुतः आभिजात्यवादी कला उस समाज या पीढ़ी की सृष्टि होती है, जिसे अपनी उपलब्धि और प्रगति के साथ जीवन के उचित और व्यापक दृष्टिकोण की सिद्धि का अहसास हो साथ ही भाषा और कला-रूपों में अपने मानस की अभिव्यक्ति के समुचित माध्यम को पा लेने का बोध हो। अर्थात् आभिजात्यवाद में आस्थावान समाज का सन्तुलन अभिव्यक्ति पाता है।

आभिजात्यवाद क्लासिक साहित्य के मूल्यों को शाश्वत मानता है। पर कठिनाई यह है कि क्लासिक साहित्य किसे कहा जाए ? परम्परा में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रीस तथा रोम के उत्कर्ष काल में रचे गये श्रेष्ठ साहित्य के लिए होता रहा है। आगे चलकर उस साहित्य को भी क्लासिक माना जाने लगा जिसमें इन रचनाओं तथा शास्त्रीय रचना-सिद्धांतों के आदेश या पद्धति का अनुकरण व अनुसरण

किया गया हो, भले ही उनकी रचना किसी अन्य युग में हुई हो। 'क्लासिक' की अवधारणा का क्रमशः विस्तार होता गया और यूरोप में इस शब्द का प्रयोग क्रमशः व्यापक अर्थ में श्रेष्ठ और युग-प्रवर्तक साहित्य के लिए होने लगा। इसकी परिधि में शेक्सपियर, मिल्टन, दांते, गेटे आदि की ही नहीं वड्र्सवर्थ, शैली जैसे स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचनाओं का भी समावेश किया जाने लगा जिसमें शास्त्रीय नियमबद्धता और वस्तुपरकता के स्थान पर व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा आत्मपरकता को महत्त्व दिया जाता था क्योंकि आभिजात्यवाद इस प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करता, बल्कि उसी प्राचीन या नवीन साहित्य को मान्यता देता है जो शास्त्रीय नियमों के चौखटे में बंधा हो।

अध्ययन की सुविधा के लिए आभिजात्यवाद की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित रूप में निर्धारित की जा सकती हैं–

1. अनुकरण–आभिजात्यवादी कला में मौलिक सृजन की उपेक्षा और साहित्य के प्राचीन और चिर-परिचित रूपों के प्रति आकर्षण दिखायी पड़ता है। इस प्रवृत्ति के रचनाकार प्राचीन कलाकारों के कृतित्व का रूपान्तर करने अथवा उनकी अनुकृति बनाते रहने का प्रयास करते हैं। साहित्यिक परम्परा के प्रति इस निष्ठा के मूल में यह विश्वास रहता है कि मनुष्य परम्परा और व्यवस्था के अभाव में कोई अच्छी बात कर ही नहीं सकता।

2. आभिजात्यवाद के समर्थक रचनाकार इसीलिए रचना को स्वतःस्फूर्त सृजन न मानकर **सायास निर्मित कलाकृति** मानते हैं। आभिजात्यवाद कला में परिष्कृत रुचि, जीवन की व्यापक दृष्टि के साथ-साथ विवेक और भावना तथा वस्तु और रूप-आकार के संतुलन को प्राथमिकता देता है। रचना के अंतरंग पक्ष में मर्यादित औदात्य, आत्मा की गरिमा, स्वच्छता और प्रशान्ति पर बल दिया जाता है तथा विचारों में व्यवस्था और स्पष्टता पर। अभिव्यक्ति में सादगी, संतुलन और सानुपातिक संरचना इन रचनाकारों का लक्ष्य होती है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में नए रूपों और संरचनाओं की खोज और उद्भावना इनका उद्देश्य नहीं रहता क्योंकि ये मानकर चलते हैं कि विशेष प्रकार के विषयों के लिए कुछ निश्चित रूपाकार ही उचित अतः लगभग पूर्वनिर्धारित होते हैं।

3. आभिजात्यवादी कला मूलतः **वस्तुनिष्ठ** कला होती है। इसकी दृष्टि में स्वच्छन्दतावादी कला की आत्मनिष्ठता के प्रति अविश्वास और वस्तुनिष्ठता के प्रति समादर भाव रहता है। वस्तुनिष्ठ प्रतिमानों की स्वीकृति का कारण एक सीमा तक इस दृष्टिकोण की अनुकरणधर्मिता है। मिल्टन मरे ने धार्मिक मान्यता से इसकी संगति की चर्चा करते हुए कहा है : "कैथलिक मत व्यक्ति से बाहर अतर्क्य आध्यात्मिक सत्ता के सिद्धांत का समर्थन करता है। आभिजात्यवाद का सिद्धांत भी यही है। अपने से बाहर की किसी चीज के प्रति निष्ठा रखे बगैर मनुष्य का

Scanned with CamScanner

काम नहीं चल सकता।" अर्थात् व्यक्ति मन की आन्तरिकता और आत्मप्रियता के बजाय जीवन की ठोस वास्तविकता इस कला की विषयवस्तु होती है।

4. आभिजात्यवाद में भावना का निषेध नहीं किया गया। वस्तुतः अनुभूति के अभाव में उत्कृष्ट कला की सृष्टि संभव नहीं है किन्तु रोमांटिक काव्य चिन्तन में भावोच्छ्वास या भावावेग को जिस रूप में काव्य-सृजन का मूल हेतु माना गया, उस रूप में आभिजात्यवादी दृष्टि भावों की अभिव्यक्ति का समर्थन नहीं करती। उसमें भावावेग के स्थान पर भाव-संयम और **भाव-व्यवस्था** पर बल दिया गया और भावोच्छलन् या भावों की अभिव्यक्ति के प्रति अविश्वास प्रकट किया गया।

5. स्वच्छन्दतावाद काव्य को मूलतः कवि की आत्मीय अभिव्यक्ति मानता है। इस प्रकार उसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा और प्रतिनिधित्व होता है। इसके ठीक विपरीत आभिजात्यवादी कलाकार की प्रमुख आकांक्षा होती है कि उसका साहित्य विश्वजनित सभ्यता का चरम प्रतीक हो। इस प्रकार की **सार्वभौमिकता** को लक्ष्य के रूप में स्थिर करने वाले कलाकार के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह अपनी रचना को यथासम्भव अधिकाधिक **निर्वैयक्तिक** बनाए।

6. वैयक्तिकता के अतिक्रमण की एक प्रवृत्ति आत्म की अपेक्षा **वस्तु को महत्त्व** देने की होती है और दूसरी नवीनता की उद्भावना की तुलना में **परम्परानुगतिकता** की दिशा में उन्मुखता की। स्वच्छन्दतावादी जहाँ कल्पना की उड़ान के सहारे नित नए लोकों में भ्रमण करना और आकाश की ऊंचाइयों का स्पर्श करना चाहता है वहाँ आभिजात्यवादी रचनाकार के पांव दृढ़ता से धरती से बंधे रहते हैं और वह अपनी परम्परा, अपनी विरासत के प्रति पूर्णतः सजग-सचेत रहता है। ह्यूम के अनुसार, "कल्पना की ऊंची से ऊंची उड़ानों में भी कुछ बन्धन, कुछ संयम रहता है। आभिजात्यवादी कवि मनुष्य को, इस समीपता को, उसकी इस सीमा को कभी भूलता नहीं। वह जानता है कि धरती से उसका अटूट नाता है।"

आभिजात्यवाद की प्रवृत्तियों को सुनिश्चित रूप में परिभाषित करने का प्रयास यद्यपि स्वच्छन्दतावाद के उदय और अस्त के दो दौरों में ही हुआ किन्तु उसका स्वरूप ईसा पूर्व पहली शताब्दी में ही बिल्कुल स्पष्ट हो गया था। ईसा की पाँचवी सदी तक साहित्य-चिन्तन में इसका कुछ-न-कुछ प्रभाव बना ही रहा। पाँचवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी का समय पूरे यूरोप में साहित्य तथा कला-विवेचन की दृष्टि से अंधकार युग है। ईसाई धर्म ने इस दौरान ऐसा जड़ नैतिकतावादी रूप धारण कर लिया कि उससे साहित्य तथा कला के आनंदवादी स्वरूप तथा तत्वों की क्षति हुई। यह समय धार्मिक अंधविश्वास तथा नैतिक कट्टरता से युक्त साहित्य के वर्चस्व का समय माना जाता है। यह वस्तुस्थिति साहित्य तथा कला के मुक्त विकास के लिए सर्वथा प्रतिकूल थी। इस बीच साहित्य-विवेचन तथा साहित्य के सिद्धांत-निरूपण की परंपरा लुप्त हो चली थी।

Scanned with CamScanner

यह जड़ता 14वीं–15वीं शताब्दी में उस समय टूटी जब यूरोप में एक नयी तथा मुक्त विचारधारा की शुरुआत हुई। जन-जीवन में व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा मानववाद की प्रतिष्ठा करने वाली इस प्रवृत्ति को 'रेनेसां' अर्थात पुनर्जागरण के नाम से जाना गया। इस प्रवृत्ति के कारण साहित्य और कलाओं में भी मुक्ति और स्वच्छन्दता की सम्भावना दिखायी पड़ने लगी। किन्तु जिन प्रवृत्तियों ने आरम्भ में जागरण की आशा जगायी थी वे ही आगे चलकर अतिवाद का शिकार हो गयीं।

फ्रांस में कला की बारोक शैली का प्रचलन हुआ। इस शैली का प्रचलन साहित्य की अपेक्षा चित्रकला में अधिक हुआ। पुनर्जागरण के अंतिम छोर पर सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में इसका वर्चस्व यूरोपीय कला, विशेषकर फ्रांस की कला में स्थापित हो गया। रेने वेलेक के अनुसार स्पष्टता और सादगी के विरुद्ध विक्षुब्ध, अस्तव्यस्त और तीव्र पदावली तथा जीवन के प्रति त्रासद दृष्टि इसकी विशेषता थी। इसमें व्यक्ति मन की व्याकुलता और आंतरिक तड़प की अभिव्यक्ति जिस घोर व्यक्तिवादी शैली में हुई वह एक सीमा तक स्वच्छन्दतावाद के निकट मानी जा सकती है।

कल्पना तथा स्वतंत्रता क्रमशः जिस अराजकता में बदलने लगी थी उसकी प्रतिक्रिया शास्त्रवाद या आभिजात्यवाद के पुनरुत्थान के रूप में हुई। शास्त्रवाद के इस नए उन्मेष को 'नियो-क्लासिसिज़्म' अर्थात नव्य-आभिजात्यवाद कहा गया। इस प्रवृत्ति का बीजारोपण लगभग पुनर्जागरण के समानान्तर हो चुका था। पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में अरक्षित विद्वान अपनी ग्रंथ सम्पदा के साथ इटली में आकर बस गए। वहीं इन ग्रंथों के अध्ययन, अनुवाद और पुनर्व्याख्या का सिलसिला आरम्भ हुआ। इससे जो बौद्धिक वातावरण बना उसमें इतालवी मानवतावादियों के हाथों साहित्य और कला को धार्मिक शृंखलाओं से मुक्त होकर स्वतंत्र साधना का अवसर मिला। किन्तु जब यह मुक्ति उच्छृंखलता में बदलने लगी तब एक बार फिर आभिजात्यवादी मूल्यों की स्थापना का दौर आरम्भ हुआ।

क्लासिकी आलोचना-सिद्धांतों की नींव मुख्य रूप से अरस्तू के काव्यशास्त्र पर निरन्तर होने वाले विवादों और व्याख्याओं से पड़ी। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन यद्यपि इटली में आरम्भ हुआ था किन्तु नव्य आभिजात्यवाद का उत्थान पहले फ्रांस में हुआ–शायद इसलिए कि पुनर्जागरण की प्रवृत्तियों का ह्रास भी सबसे पहले वहीं दिखायी पड़ रहा था। सोलहवीं सदी में इंग्लैंड में सर फिलिप सिडनी (1554-86) कुछ सीमा तक क्लासिकी मूल्यों को मान्य ठहरा चुके थे किन्तु उनकी मूल दृष्टि पुनर्जागरणवादी ही थी।

सही अर्थ में नव्यशास्त्रवाद का विकास सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ। फ्रांसीसी शास्त्रवाद का आरम्भ 'बारोक' संस्कृति की गैर-शास्त्रीयता के विरोध में हुआ। रासीन, कार्नील और बुअलो जैसे रचनाकार और साहित्यशास्त्री साहित्य

Scanned with CamScanner

में फैली अराजकता का विरोध करने लगे। सर्जन की स्वतंत्रता के नाम पर व्याप्त अशास्त्रीयता के विरुद्ध उन्होंने शास्त्रीयता और संयम की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया। साहित्यिक रचनाओं के नियम तथा सिद्धांतों के लिए इन लोगों ने अरस्तू और होरेस का अनुसरण किया। संवेगों या भावावेगों की अनियंत्रित अभिव्यक्ति के विरुद्ध इन्होंने 'विवेक', स्पष्टता और व्यवस्था की वकालत की। प्राचीन साहित्य को उन्होंने श्रेष्ठ तथा अपने समय के लिए अनुकरणीय माना। साहित्य में इस प्रवृत्ति का प्रतिफलन विशेष रूप से नाटकों में दिखायी पड़ा। मोलियर, कार्नील, रासीन आदि के शास्त्रानुमोदित परिपाटीबद्ध उच्च कोटि के नाटकों में आभिजात्यवाद का चरम विकास हुआ।

फ्रांसीसी शास्त्रवाद एक अभिजात समाज-दृष्टि को प्रतिबिम्बित करता था। एक ऐसी दृष्टि–जिसमें कला को विशिष्ट जन समुदाय की सम्पदा माना गया था। परिणामतः ये रचनाएं इसी विशिष्ट अभिजात वर्ग के दृष्टिकोण तथा अभिरुचि से अनुशासित होती थीं।

इंग्लैंड में भी सत्रहवीं सदी में ही नव्य-आभिजात्यवाद का प्रभाव दिखायी पड़ने लगा था। सत्रहवीं से अठारहवीं सदी तक बेन जॉनसन (1573-1637), जान ड्राइडन (1631-1700), अलक्जेंडर पोप (1688-1744) तथा सैमुअल जॉनसन (1740-95) आदि ने इस प्रवृत्ति का पोषण किया। किन्तु यह दृष्टि मध्यवर्ग की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती थी। इस दृष्टिकोण की प्रतिनिधि रचना पोप का 'ऐस्से ऑन क्रिटिसिज़्म' (1711) है। यूं आलोचकों ने बेन जॉनसन को पहला अंग्रेज विद्वान माना है, जिनमें नव्य-आभिजात्यवादी प्रवृत्ति अपने पूर्ण रूप में निरन्तर दिखायी पड़ती है। बेन जॉनसन ने सिद्धांत विवेचन भी किया और होरेस के 'आर्स पोएटिका' का अनुवाद भी।

ड्राइडन ने भी वर्जिल, जुबेनल, ओविड आदि का अनुवाद किया और अपनी रचनाओं में परम्परा के श्रेष्ठ तत्त्वों के प्रति आस्था का परिचय दिया। उनकी रचना 'एन एस्से ऑफ़ ड्रैमेटिक पोएज़ी' (1668) से उनकी साहित्यिक मान्यताओं का परिचय मिलता है।

पोप के साहित्यिक सिद्धांतों का आधार भी प्राचीन विचारकों की पद्धति थी। उनका विश्वास था कि इन सिद्धांतों का आधार लेने पर सफलता निश्चित होती है। वे अपने युग के मध्यवर्ग से जुड़े थे। उन्होंने फ्रैंच आभिजात्यवाद के विवेक, संयम तथा अनुशासनप्रियता को तो ग्रहण किया, उसके उच्च वर्गीय या दरबारी चरित्र को नहीं। उन्होंने लेखक के सामाजिक दायित्व के प्रति आस्था व्यक्त की। उनका विचार था कि व्यक्तियों और उनके व्यवहार पर लेखक का प्रभाव पड़ता है। इसलिए उसे ऊंचे नैतिक और सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए और व्यवहार की शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षित मध्य वर्ग का उदय और

Scanned with CamScanner

छापेखाने के विकास के कारण एक बहुत बड़े समुदाय तक साहित्य की पहुँच उनकी इस चिन्ता का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। दृष्टि के इस युगानुरूप खुलेपन के बावजूद पोप के रचना-संबंधी आदर्श पुराने थे। रचना के शिल्प-संबंधी शास्त्रीय नियमों का पालन वे अनिवार्य मानते थे।

कुल मिलाकर 17वीं–18वीं सदी के अंग्रेजी साहित्य-चिंतन में प्राचीन आभिजात्यवादी नियमों के अनुसार तर्क तथा बुद्धिपक्ष की प्रधानता, तथा संयम, संतुलन एवं आदर्शवाद का समर्थन मिलता है। आभिजात्यवाद से इनमें एक बड़ा अंतर यह था कि इनकी दृष्टि मात्र अभिजात वर्ग तक सीमित न रहकर जनसामान्य तक व्यापक हो गयी थी। नव्य-आभिजात्यवाद का यह दौर इंग्लैंड में अठारहवीं सदी के अंत तक समाप्त हो चला था।

नव्य-आभिजात्यवाद को दार्शनिक आधार 18वीं शताब्दी में जर्मनी पहुँचकर मिला। गेटे, शिलर, ह्यूम आदि विचारकों के विवेचन में इसका प्रभाव दिखायी पड़ा। ह्यूम (1711-46) के अनुसार मनुष्य की वृत्ति मूलतः पापोन्मुख होती है, इसलिए उसे स्वतंत्रता की नहीं नैतिक नियमों की आवश्यकता है। ये मूल्य तभी प्रभावी हो सकते हैं जब उनके मापदण्ड निर्वैयक्तिक, वस्तुपरक और सामाजिक हों, आत्मपरक या आंतरिक नहीं।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में 'प्राचीनों' और 'आधुनिकों' के बीच गहन वाक्-युद्ध हुआ जो अठारहवीं शताब्दी तक चलता रहा। 18वीं शताब्दी में श्लेगल ने शास्त्रवाद का पक्ष लेकर और फ्रांसीसी विदुषी मदाम दस्ताल ने उसे जड़ और रूढ़िबद्ध करार देकर इस विवाद का संचालन किया। विजय अन्ततः स्वच्छन्दतावादियों की हुई।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से फ्रांस में और 19वीं सदी के अंत तथा 20वीं सदी के आरम्भ में इंग्लैंड तथा अमरीका में भी फिर से नव्य-आभिजात्यवादी प्रवृत्ति उभरने लगी। फ्रांस में सेंट व्यव (1804-69) ने क्लासिक रचनाओं का उल्लेख करते हुए नैतिकता, आदर्श, मानवीयता तथा मध्यम मार्ग को उनकी प्रमुख विशेषता माना। इसके साथ ही उन्होंने उनमें अभिकल्प की अन्विति (यूनिटी आफ़ डिज़ाइन) समुचित निष्पादन (एक्ज़ेक्यूशन) तथा व्यवस्था को आवश्यक ठहराते हुए संप्रेषणीयता और सार्वकालिकता की वकालत की। सेंट व्यव ने आभिजात्यवादी रचनाकारों की विशेषताओं को भी रेखांकित किया।

इंग्लैंड में मैथ्यू आर्नल्ड (1822-89) ने स्वच्छन्दतावाद के पराभव के समय साहित्य को जीवन से जोड़ने की आवश्यकता को समझाया। यह ऐसा समय था जब समाज से साहित्य का संबंध लगभग घटता जा रहा था। कविता को वे 'जीवन की आलोचना' मानते थे, और सामाजिक तथा नैतिक प्रतिमानों पर बल देते थे। उनके अनुसार कविता का प्रयोजन लोक-कल्याण है, मात्र मनोरंजन नहीं। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उस प्राचीन (अभिजात) साहित्य के आदर्श का अनुसरण

Scanned with CamScanner

आवश्यक है जिसमें महान् कृत्यों तथा मनुष्य के स्थायी मनोवेगों का वर्णन गहन गरिमा, गंभीरता तथा संतुलन के साथ किया जाता था। आर्नल्ड काव्य में वस्तु और रूप का संतुलन भी आवश्यक मानते थे। उन्होंने रचना तथा आलोचना दोनों के ही संदर्भ में गरिमा, संतुलन तथा नैतिक दृष्टि के आभिजात्यवादी मूल्यों पर बल दिया।

आर्नल्ड के बाद बीसवीं शताब्दी में जिन विचारकों ने नव्य-आभिजात्यवाद को नए सिरे से पुनः परिभाषित किया उनमें विशेष रूप से इर्विंग बेबिट, टी. एस. एलियट और ह्यूम का उल्लेख किया जाता है। इनमें एलियट (1882-1965) का महत्त्व सर्वाधिक है। उन्होंने सन् 1928 में साहित्य के प्रति अपने दृष्टिकोण को औपचारिक रूप से 'आभिजात्यवादी' कहा। वे अपने प्रसिद्ध निबंध 'ट्रेडिशन एण्ड इण्डिविजुअल टैलेन्ट' में सन् 1919 में ही आभिजात्यवादी सिद्धांतों की स्थापना कर चुके थे। कला को उन्होंने वस्तुनिष्ठ माना। विषय में गरिमा और प्रौढ़ता पर बल दिया और कुछ बिन्दुओं पर नव्य-आभिजात्यवादी परंपरा में कुछ नया भी जोड़ा। उन्होंने परम्परा को महत्त्व तो दिया ही, वैयक्तिक प्रतिभा के महत्त्व को भी स्वीकार किया। परम्परा को भी उन्होंने जड़ और निरपेक्ष नहीं माना। उनके अनुसार हर रचना परंपरा का हिस्सा भी होती है, साथ ही उसमें कुछ जोड़ती और बदलती भी है। एलियट ने आर्नल्ड की ही तरह आलोचना की भूमिका पर भी विचार किया और तटस्थता को उसका आवश्यक गुण माना।

ह्यूम ने आभिजात्यवाद को दार्शनिक आधार दिया। उन्होंने रोमांटिसिज़्म की सापेक्षता में क्लासिसिज़्म की व्याख्या करते हुए कहा : "रूसो के अनुसार रोमांटिसिज़्म में मनुष्य को सम्भावनाओं का अनन्त कोश माना गया, जबकि क्लासिकी दृष्टि में मनुष्य वस्तुतः सीमित है और परम्परा तथा नियमों के अनुशासन द्वारा मूल्यवान उपलब्धि करता है।" इस मान्यता के मूल में इसाई मत की मनुष्य संबंधी अवधारणा काम कर रही थी।

बीसवीं शताब्दी में एलियट, ह्यूम और अन्य विचारकों में नव्य-आभिजात्यवादी दृष्टि के माध्यम से वस्तुनिष्ठता को अनिवार्य कला मूल्य के रूप में स्थापित किया। इसी युग में कुछ और आंदोलनों तथा अनुशासनों में भी वस्तुनिष्ठता की प्रवृत्ति का समर्थन किया गया। इनमें मुख्य थी रूपवादी आलोचना जिसमें कविता को मूलतः भाषिक संरचना माना गया और उसके अध्ययन का आधार अंतर्वस्तु को न बनाकर रूपगत विधान को बनाया गया।

नव्य-आभिजात्यवाद की विशेषताओं का आकलन करने पर यह स्पष्ट दिखायी पड़ता है कि ये विशेषताएं आभिजात्यवाद में लक्षित होने वाली विशेषताओं से मूलतः भिन्न नहीं हैं। आभिजात्यवाद में प्राचीन ग्रीक तथा रोमन साहित्य के अतिरिक्त उस विचार-पद्धति के प्रति भी आस्था थी जिसके आधार पर उस साहित्य की रचना हुई थी। यह आस्था परंपरा के प्रति उस श्रद्धाभाव से उपजी थी जिसकी

Scanned with CamScanner

मान्यता थी कि प्राचीन परंपरा ने श्रेष्ठता के शिखर को पा लिया है और उसे जन्म देने वाला समाज एक प्रकार से पूर्ण समाज है। आभिजात्यवाद का विश्वास था कि प्राचीन युग के रचनाकारों ने अभिव्यक्ति के सही साधन पाकर सभी कला रूपों को सिद्ध कर लिया है। इसलिए उनके द्वारा स्थापित नियमों को शाश्वत और सार्वकालिक मानकर हर युग में उन्हें कला के मूल्यांकन की कसौटी बनाना चाहिए। नव्य-आभिजात्यवाद में भी लंबे समय तक इसी विचार का कट्टरता से अनुगमन किया गया। कार्नील, बुअलो, रासीन आदि ने सभी स्तरों पर प्राचीन साहित्य के अनुकरण को काम्य माना तथा साहित्य-रूपों के अनिवार्य तत्त्वों का निर्धारण प्राचीन रचनाओं और सिद्धांतों के ही आधार पर किया। इस दृष्टि में बदलाव अट्ठारहवीं सदी में तब आया जब अलेक्ज़ेंडर पोप ने इस बाह्य अनुकरण के बजाय आदर्शों के अनुकरण पर बल दिया।

आभिजात्यवाद और नव्य-आभिजात्यवाद में प्राचीन मूल्यों के प्रति निष्ठा के कारण नये प्रयोगों का विरोध होता रहा है। अनुकरण और रूढ़िबद्धता की प्रवृत्ति जहाँ कृति में संतुलन और अनुशासन लाती है वहाँ वैयक्तिक प्रतिभा और सर्जनशीलता के मार्ग में बाधक होती है। इसी कारण परवर्ती नव्य-आभिजात्यवाद में रचना परंपरा के अनुकरण के बजाय मूल्यों और आदर्शों के अनुसरण को प्राथमिकता दी गयी।

नव्य-आभिजात्यवाद में भी प्राचीन अभिजात-साहित्य की तरह वैशिष्ट्य (एक्सिलेंस) तथा चिरंतनता (परमनेंस) के मूल्यों को ही साहित्य का शाश्वत मूल्य माना गया। नव्य-आभिजात्यवाद में कला तथा साहित्य में संतुलन, संयम, अनुशासन, व्यवस्था तथा तर्क संगति के मूल्यों पर बल दिया गया। वस्तुनिष्ठता पर अधिक बल देने के कारण नव्य-आभिजात्यवादी चिन्तन में रूप (फार्म) पर बल बढ़ता गया। कृति की श्रेष्ठता का आधार उसके बाह्य-गठन का सौष्ठव हो गया। भाषा, अलंकार तथा छंद-योजना का महत्त्व बढ़ता गया और मौलिक सृजन की संभावना कम होती गयी।

आभिजात्यवाद और नव्य-आभिजात्यवाद दोनों में वैयक्तिकता के स्थान पर सार्वभौमिकता का पक्ष प्रधान रहा। कवि के लिए उन्होंने आवश्यक माना कि वह देश-काल से निरपेक्ष होकर सही और गलत, उचित और अनुचित के प्रत्ययों का सार्वभौम स्तर पर विवेचन करे। उसका सरोकार व्यक्ति से न होकर संपूर्ण जाति और समाज की सामान्य वृत्तियों से होना चाहिए। काव्य के प्रयोजनों में उन्होंने आनंद को गौण और शिक्षा को प्रमुख माना।

आभिजात्यवाद मूलतः अभिजात वर्ग के साहित्य से प्रेरित हुआ था। नव्य-आभिजात्यवादी साहित्य भी नागर और सुशिक्षित वर्ग से जुड़ा था। इस साहित्य में भावना की अपेक्षा बुद्धि और तर्क प्रधान थे। आभिजात्यवाद में सामान्यतः भावुकता

Scanned with CamScanner

और आत्मानुभूति की उपेक्षा की जाती थी किन्तु विकास-क्रम में नव्य-आभिजात्यवाद में पंडिताऊ वृत्ति की कट्टर शास्त्रबद्धता क्रमशः कम होती गई और सिद्धांत-निरूपण के लिए तर्क, विवेक और युगानुरूपता को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। 20वीं शताब्दी तक आते-आते अनुभूति तथा संवेदनशीलता के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाने लगा। नव्य-आभिजात्यवादी दृष्टि मूलतः समाजोन्मुखी होती है और सिद्धांत के स्तर पर इस मान्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रचना में भाव और बुद्धि का समन्वय होना चाहिए। आर्नल्ड ने कविता और जीवन के पारस्परिक संबंध पर जिस रूप में बल दिया वह प्रगतिशील विचारधारा का भी मूल आधार है। निष्कर्ष रूप में कहना अनुचित न होगा कि नव्य-आभिजात्यवाद की मूल दृष्टि में अनेक बातें ऐसी हैं जिनके कारण वर्तमान साहित्यालोचन पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव है।

Scanned with CamScanner